[2018] 12 एस.सी.आर. 327

अचपल @ रामस्वरुप एवं अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य

(आपराधिक अपील संख्या 1218/2018)

सितंबर 24, 2018

[न्यायमूर्ति, अभय मनोहर सप्रे एवं न्यायमूर्ति, उदय उमेश ललित]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा–167 (2)– अभिरक्षा में अभियुक्त का जमानत पर रिहा होने का अधिकार–अपीलार्थियों–अभियुक्तों के खिलाफ दर्ज प्रथम सुचना रिपोर्ट – अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया गया और पुलिस/मजिस्ट्रेट अभिरक्षा में भेज दिया गया–शिकायतकर्ता द्वारा उचित और निष्पक्ष जांच के लिए प्रार्थना करते हुए दायर याचिका के तहत निर्धारित अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं हुई–उच्च न्यायालय ने दिनांक 03.07.18 को आदेश पारित किया जिसमे यह निर्देश दिया कि जाँच एक राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा की जाए, जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (ASP) के पद से नीचे पद का न हो– ASP से कम रैंक के पुलिस अधिकारी द्वारा दायर आरोप–पत्र दिनांक 05.07.18 पर–मजिस्ट्रेट ने उचित अनुपालन के लिए पुलिस को आरोप–पत्र वापस कर दिया– 90 दिनों की समाप्ति के तुरंत बाद, अपीलकर्ताओं ने द.प्र.स कि धारा 167 (2) के तहत आवेदन प्रस्तुत किया –आवेदन अस्वीकृत– अभिनिर्धारित – धारा 167 (2) के सन्दर्भ में, जांच का चरण 90 या 60 दिनों तक सीमित होना चाहिए, जैसा भी मामला हो–रिनी निर्धारित अवधि की समाप्ति पर, निर्धारित अवधि के भीतर जांच पूरी करने में जांच एजेंसी द्वारा चूक के कारण जमानत पर रिहा होने के लिए आरोपी के पक्ष में एक अव्यवहार्य अधिकार प्राप्त होता है–क्योंकि, अपीलार्थी दिनांक 08.04.18 से हिरासत में थे, धारा 167 (2) के सन्दर्भ में जाँच दिनांक 07.07.18 द्वारा पूरा किया जाना था–हालाँकि, वर्तमान मामले में, निर्धारित अवधि के 90 दिन पूरे होने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष जाँच के कोई कागजात नहीं थे–इस प्रकार अपीलार्थियों को कानून द्वारा स्थापित सुरक्षा से वंचित कर दिया गया था–अपीलार्थी धारा 167 (2) संदर्भ में जमानत के हकदार ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 –धारा167 (2)– अनुसंधान के लिए अवधि–यदि उच्च न्यायालय द्वारा बढ़ाई जा सकती है– अभिनिर्धारित – संहिता के प्रावधान किसी को भी उस अवधि को बढ़ाने का अधिकार नहीं देते हैं जिसके भीतर अनुसंधान पूरा करा जाना चाहिए और न ही यह ऐसी किसी घटना को स्वीकार करता है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित: 1.1 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 (2) के तहत निर्धारित अवधि की समाप्ति पर अभियुक्त के पक्ष में एक अक्षम्य अधिकार अर्जित होता है कि वह निर्धारित अवधि के

भीतर अनुसंधान पूरा करने में अनुसंधान एजेंसी द्वारा चूक के कारण जमानत पर रिहा किया जाए और अभियुक्त जमानत पर रिहा होने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट के निर्देश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है और प्रस्तुत करता है। [पैरा 11] [334–ई. एफ.]

1.2 संहिता की धारा 167 के अधिनियमन के पीछे की भावना अनिवार्य करती है कि अनुसंधान निर्धारित अवधि के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। आदर्श रूप से, संहिता के प्रावधानों के अनुसार जांच पहले 24 घंटों के भीतर ही पूरी की जानी चाहिए। इसके अलावा धारा 167 की उप–धारा (1) के संदर्भ में, यदि "यह प्रतीत होता है कि अनुसंधान धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर पूरा नहीं किया जा सकता है" तो संबंधित अधिकारी को मामले से संबंधित डायरी में प्रविष्टियां प्रेषित करनी चाहिए और साथ ही आरोपी को मजिस्ट्रेट के पास भेजना चाहिए। इसके बाद, यह मजिस्ट्रेट को विचार करना है कि आरोपी को अभिरक्षा में भेजा जाए या नहीं। उप–धारा (2) तब मजिस्ट्रेट की शक्ति के प्रयोग पर कुछ सीमाएं निर्धारित करती है और परंतुक में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट आरोपी को 90 या 60 दिनों से अधिक की कुल अवधि के लिए अभिरक्षा में रखने को अधिकृत नहीं कर सकता है, जैसा भी मामला हो। यह आगे निर्धारित किया गया है कि 90 और 60 दिनों की ऐसी अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो, आरोपी को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा, यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत देता है।[पैरा 16] [339–डी–जी]

1.3 इस प्रावधान का एक निश्चित उद्देश्य है कि अनुसंधान से संबंधित सामग्री के आधार पर, मजिस्ट्रेट मामले को आगे बढ़ाने की स्थिति में होना चाहिए। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि अनुसंधान का चरण 90 या 60 दिनों तक सीमित होना चाहिए, जैसा भी मामला हो, और उसके बाद आरोपी की अभिरक्षा से संबंधित मुद्दे को मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसंधान के आधार पर निपटाया जाना चाहिए। स्वतंत्रता से संबंधित मामले और मुद्दे और आरोपित व्यक्ति को कैद किया जाना चाहिए या नहीं, यह मजिस्ट्रेट द्वारा तय किया जाना चाहिए न कि पुलिस द्वारा– ऐसे व्यक्ति की आगे की अभिरक्षा केवल इस संदेह के आधार पर नहीं होनी चाहिए कि उसने ऐसा अपराध किया होगा या उस मामले के लंबित अनुसंधान को सुविधाजनक बनाने के लिए। वर्तमान मामले में 90 वें दिन, संबंधित मजिस्ट्रेट के लिए स्थिति का आकलन करने के लिए संहिता की धारा 173 के संदर्भ में कोई कागजात या आरोप पत्र नहीं थे कि क्या गुण–दोष के आधार पर आरोपी को आगे अभिरक्षा में भेजे जाने की आवश्यकता थी। हालाँकि धारा 173 के संदर्भ में आरोप पत्र 05.07.2018 पर दायर किया गया था, लेकिन इस तरह की फाइलिंग दिनांक 03.07.2018 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में नहीं थी, इसलिए कागजात अनुसंधान अधिकारी को वापस कर दिए गए। तथ्य यह है कि संहिता की धारा 167 के तहत निर्धारित अवधि के 90 दिन पूरे होने पर संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष अनुसंधान के कोई कागजात नहीं थे। इस प्रकार अभियुक्तों को कानून द्वारा स्थापित संरक्षण से वंचित कर दिया गया। उनकी अभिरक्षा के मुद्दे पर संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा गुण–दोष के आधार पर विचार किया जाना था और इस तरह के विचार के लिए उन्हें केवल अभिरक्षा में नहीं भेजा जा सकता था। इसलिए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत निवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए।[पैरा 17,18] [339–जी–एच; 340–बी–सी, ई–एफ]

1.4 संहिता के प्रावधान किसी को भी उस अवधि को बढ़ाने का अधिकार नहीं देते हैं जिसके भीतर अनुसंधान पूरा किया जाना चाहिए और न ही यह ऐसी किसी घटना को स्वीकार करता है। आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1985 और महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 जैसे अधिनियम हैं जो स्पष्ट रूप से अवधि के विस्तार पर विचार करते हैं और उस हद तक उन अधिनियमों ने धारा 167 सहित संहिता के प्रावधानों को संशोधित किया है।न्यायालय को अवधि बढ़ाने का अधिकार देने वाले ऐसे किसी भी समान प्रावधान के अभाव में, कोई भी न्यायालय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी अवधि का विस्तार नहीं कर सकता था।मामले की किसी भी स्थिति में उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 03.07.2018 के आदेश में जो कुछ भी दर्ज किया था, वह यह था कि राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा दो महीने के भीतर जांच पूरी कर ली जाएगी। आदेश से यह संकेत नहीं मिलता है कि यह उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था कि जांच पूरी करने की अवधि समाप्त हो रही थी। केवल लोक अभियोजक के प्रस्तुत करने की रिकॉर्डिंग को विस्तार देने वाले आदेश के रूप में नहीं लिया जा सकता था। इस प्रकार, राज्य और शिकायतकर्ता द्वारा उस ओर से प्रस्तुत की गई दलीलों को खारिज कर दिया जाता है। अभियुक्तों ने जमानत के लाभों में भर्ती होने की अपनी इच्छा दिखाई है और एक उपयुक्त याचिका दायर की है। आवेदन, एक अक्षम्य अधिकार उनके पक्ष में अर्जित हुआ। अपीलार्थी संहिता की धारा 167 (2) के संदर्भ में ऐसी शर्तों पर जमानत के लिए स्वीकार किए जाने के हकदार हैं जिन्हें विचारण न्यायालय उचित समझे। हालाँकि, यह प्रश्नगत आरोप के संबंध में ठोस आधारों पर अभियुक्त की गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी को प्रतिबंधित या अन्यथा नहीं रोकेगा और गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी पर अभियुक्त नियमित जमानत देने के लिए याचिका का हकदार होगा, जिसके आवेदन पर तब अपनी योग्यता के आधार पर विचार किया जाएगा। [पैरा 18–20] [340–F–H; 341–A–C, F–H; 342–A]

उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2001) 5 एससीसी 453: [2001] 2 एससीआर 878;
राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य (2017) 15 एससीसी 67– पर आधारित किया गया।

हितेंद्र विष्णु ठाकुर और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (1994) 4 एस. सी. सी. 602: [1994] पूरक। एस. सी. आर. 360;
संजय दत्त बनाम सी. बी. आई. के माध्यम से बॉम्बे राज्य (II) (1994) 5 एस. सी. सी. 410: [1994] 3 पूरक एससीआर 263;
बिपिन शांतिलाल पांचाल बनाम गुजरात राज्य (1996)1 एससीसी 718: [1996] 1 एससीआर 193;
राज्य डब्ल्यू. बी. बनाम दिनेश डालमिया (2007) 5 एस. सी. सी. 773: [2007] 5 एससीआर 561;
संजय कुमार केडिया बनाम खुफिया अधिकारी, मादक पदार्थ नियंत्रण ब्यूरो व अन्य (2009) 17 एस. सी. सी. 631: [2010]1 एससीआर 555;
भारत संघ बनाम निराला यादव (2014) 9 एससीसी 457: [2014] 6 एस. सी. आर. 148;
रणबीर शोकीन बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) (2018) 4 एस. सी. सी. 405– संदर्भित मामला

केस लॉ रिफरेन्स

[2001] 2 एस.सी.आर. 878	निर्भर किया गया	पैरा 10
[1994] 1 पूरक एस. सी. आर. 360	संदर्भित किया गया	पैरा 10
[1994] 3 एस. सी. आर. 263	संदर्भित किया गया	पैरा 10
[1996] 1 एस. सी. आर. 193		पैरा 10
[2007] 5 एस. सी. आर. 561		पैरा 11
[2010] 1 एस. सी. आर. 555		पैरा 11
[2014] 6 एस. सी. आर. 148		पैरा 11
(2018) 4 एस. सी. सी. 405		पैरा 11
(2017) 15 एस. सी. सी. 67	निर्भर किया गया	पैरा 14

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः 2018 की आपराधिक अपील संख्या 1218

राजस्थान उच्च न्यायालय के पीठ जयपुर के न्यायिक निर्णय और आदेश दिनांक 23.07.2018 से एस.बी आपराधिक विविध जमानत संख्या 9035 ऑफ 2018

सिद्धार्थ दवे, ऋषि मटोलिया, सुश्री सुमति शर्मा, महावीर जाट, एच. डी. थानवी, पुरुषोत्तम लाल गोयल, मिलिंद कुमार, एम. सी. ढींगरा, गौरव ढींगरा, पीयूष कांत रॉय, विक्रांत यादव, अधिवक्ता पक्षकारों की ओर।

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा पारित गया था

न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित, 1. अनुमति प्रदान की गयी।

2. यह अपील 2018 के एस.बी.सी.आर.एम.बी. क्रमांक 9035 में जयपुर में राजस्थान पीठ के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.07.2018 के फैसले और आदेश की शुद्धता को चुनौती देती है।

3. एफ.आई.आर. क्रमांक 16 /2018 दिनांक 24.03.2018 को पुलिस स्टेशन बहरवांडा कलां, जिला सवाई माधोपुर में 18 व्यक्तियों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा

143, 341, 323, 452, 336, 302 सहपठित धारा 149 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज की गयी। अपीलार्थियों को उक्त अपराध में अभियुक्त क्र.1 और 2 के रूप में नामित किया गया था और दिनांक 08.04.2018 को गिरफ्तार किया गया था। बाद में उन्हें समय–समय पर पुलिस/मजिस्ट्रेट अभिरक्षा में भेज दिया गया।

4. बाद में शिकायतकर्ता द्वारा विविध आपराधिक याचिका क्रमांक 3517/ 2018 मामले में उचित और निष्पक्ष जांच के लिए अनुरोध करते हुए दायर की गई थी, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 03.07.2018 को एक आदेश पारित किया गया था। उक्त आदेश में लोक अभियोजक की प्रस्तुति को निम्नानुसार दर्ज किया गया हैः

> "राज्य के विद्वान लोक अभियोजक ने, याचिकाकर्ता की आशंका को दूर करने के लिए, शुरुआत में प्रस्तुत किया है कि न केवल राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा निष्पक्ष अनुसंधान किया जाएगा, जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक के पद से कम नहीं होगी, बल्कि अनुसंधान अधिकारी की राय के साथ अनुसंधान की रिपोर्ट अनुसंधान अधिकारी द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत की जाएगी।"

याचिका का निपटारा इस प्रकार दर्ज की गई प्रस्तुतियों के संदर्भ में किया गया था।

5. चूँकि अपीलार्थी 08.04.2018 से अभिरक्षा में थे, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षिप्त संहिता) की धारा 167 के संदर्भ में अनुसंधान 07.07.2018 को पूरा किया जाना था। दिनांक 05.07.2018 पर पुलिस द्वारा संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 173 के तहत एक रिपोर्ट दायर की गई थी। चूंकि उक्त रिपोर्ट ए.एस.पी. से अनिम्न रैंक के एक पुलिस अधिकारी द्वारा दायर की गई थी और इस प्रकार यह 03.07.2018 पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विपरीत थी, इसलिए शिकायतकर्ता द्वारा उपरोक्त आदेश की प्रमाणित प्रति दिनांक 03.07.2018 रखते हुए एक आवेदन दायर किया गया था। मजिस्ट्रेट ने उक्त आदेश की सामग्री को नोट करने के बाद, उचित अनुपालन के लिए पुलिस को दिनांकित 03.07.2018 आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ आरोप पत्र वापस कर दिया। इस प्रकार 90 वें दिन की समाप्ति पर यानी दिनांक 07.07.2018 पर संहिता की धारा 173 के तहत कोई रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के पास रिकॉर्ड में नहीं थी।

6. 90 दिनों की समाप्ति के तुरंत बाद अपीलकर्ताओं ने संहिता की धारा 167 (2) के प्रावधानों के तहत जमानत के लिए आवेदन दायर किया।

7. न्यायिक मजिस्ट्रेट, खंडार, जिला सवाई माधोपुर ने अपने दिनांकित 09.07.2018 के आदेश द्वारा संहिता की धारा 167 (2) के तहत लाभ के लिए प्रार्थना को खारिज कर दिया। यह देखा गया कि चूंकि 05.07.2018 पर दायर आरोप पत्र उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन नहीं कर रहा था, इसलिए तकनीकी खराबी के कारण आरोप पत्र वापस कर दिया गया था। यह भी देखा गया कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 03.07.2018 के आदेश का प्रभाव उस अवधि का विस्तार था जिसके भीतर अनुसंधान पूरा किया सकता था।

8. उपरोक्त अस्वीकृति को एस.बी.सी.आर.एल. विविध आपराधिक जमानत क्रमांक 9035 / 2018 दाखिल करके चुनौती दी गई और उच्च न्यायालय ने 23.07.2018 पर उक्त याचिका को खारिज करते हुए कहाः

"दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 (2) के तहत जमानत देने का कोई मामला नहीं बनाया गया है, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा 2018 की आपराधिक विविध (याचिका) क्रमांक 3517 में समय बढ़ाया गया था और अनुसंधान अधिकारी को आरोप पत्र दायर करने के लिए दो महीने का समय दिया गया था। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अनुसंधान अधिकारी ने 90 दिनों से पहले संबंधित न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया था, लेकिन उच्च न्यायालय के आदेश को देखते हुए उसे वापस कर दिया गया था।"

9. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश वर्तमान में अपील के अधीन है। हमने अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ दवे, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री मिलिंद कुमार और श्री एम. सी. ढींगरा, शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता। श्री दवे, विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि 05.07.2018 पर संहिता की धारा 173 के तहत दायर रिपोर्ट मजिस्ट्रेट द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 03.07.2018 के उचित अनुपालन के लिए वापस कर दी गई थी, 90 दिनों की समाप्ति पर, न्यायालय के विचार के लिए कोई आरोप पत्र नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि संहिता किसी भी अवधि के विस्तार पर विचार नहीं करती है जिसके भीतर अनुसंधान पूरा किया जा सकता है और इस तरह उच्च न्यायालय के दिनांक 03.07.2018 के आदेश को कभी भी अनुसंधान की अवधि बढ़ाने के लिए नहीं माना जा सकता है। अपनी प्रस्तुति में, अपीलकर्ताओं ने जमानत के लाभ के लिए भर्ती होने की अपनी इच्छा दिखाई और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को देखते हुए उचित आवेदन को प्राथमिकता दी, वे जमानत पर रिहा होने के हकदार थे। दूसरी ओर राज्य के विद्वान अधिवक्ताओं और शिकायतकर्ता ने प्रस्तुत किया कि अनुसंधान पूरा हो गया था और 05.07.2018 पर उचित आरोप पत्र दायर किया गया था और 03.07.2018 के आदेश के अनुपालन में कागजातों की वापसी को मामले में आगे के अनुसंधान की दिशा में एक कदम के रूप में माना जाना चाहिए।

10. **उदय मोहनलाल आचार्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में इस न्यायालय के फैसले में एक ऐसे अभियुक्त के अधिकारों के बारे में कानून स्पष्ट किया गया है जो अनुसंधान लंबित होने तक अभिरक्षा में है और जहां संहिता की धारा 167 (2) के तहत निर्धारित अवधि के भीतर अनुसंधान पूरा नहीं हुआ है। इस मामले में इस निर्णय को ध्यान में रखा गया **हितेंद्र विष्णु ठाकुर और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, संजय दत्त बनाम सी. बी. आई. के माध्यम से राज्य, बॉम्बे (II) और बिपिन शांतिलाल पांचाल बनाम गुजरात राज्य. न्यायमूर्ति पटनायक** (तब विद्वान मुख्य न्यायाधीश के रूप में) अपने निर्णय के पैरा 13 में दर्ज किए गए निष्कर्षों के बहुमत के लिए बोल रहे थे। वर्तमान उद्देश्यों के लिए, हम निम्नलिखित निष्कर्ष 3 और 4 निकाल सकते हैंः–

"... ... ...

3. 90 दिनों या 60 दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो, अभियुक्त के पक्ष में एक अक्षम्य अधिकार प्राप्त होता है कि वह निर्धारित अवधि के भीतर अनुसंधान

पूरा करने में अनुसंधान एजेंसी द्वारा चूक के कारण जमानत पर रिहा किया जाए और अभियुक्त जमानत पर रिहा होने का हकदार है, यद वह मजिस्ट्रेट के निर्देश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है और प्रस्तुत करता है।

1 (2001) 5 एस. सी. सी. 453
2 (1994) 4 एस. सी. सी. 602
3 (1994) 5 एस. सी. सी. 410
4 (1996) 1 एस. सी. सी. 718

4. जब किसी अभियुक्त द्वारा अपने अक्षम्य अधिकार को लागू करने के लिए जमानत के लिए आवेदन दायर किया जाता है, जो कथित रूप से निर्दिष्ट अवधि के भीतर अनुसंधान पूरा करने में अनुसंधान एजेंसी की ओर से चूक के कारण उसके पक्ष में अर्जित किया गया था, तो मजिस्ट्रेट/न्यायालय को यह संतुष्ट होने पर कि वास्तव में आरोपी 90 दिनों या 60 दिनों की अवधि के लिए अभिरक्षा में है, का तुरंत निपटारा करना चाहिए, जैसा कि निर्दिष्ट किया गया है और अनुसंधान एजेंसी द्वारा कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है। मजिस्ट्रेट/अदालत की ओर से इस तरह की त्वरित कार्रवाई अभियोजन अधिनियम के उद्देश्य और अनुसंधान एजेंसी की ओर से निर्धारित अवधि के भीतर अनुसंधान पूरा करने में चूक के कारण आरोपी को जमानत पर रिहा करने के विधायी आदेश को विफल करने में सक्षम नहीं बनाएगी।

.....
.....''

11. **उदय मोहनलाल आचार्य** (सुपरा) में निर्धारित सिद्धांतों का इस न्यायालय द्वारा **वेस्ट बंगाल राज्य बनाम दिनेश डालमिया; संजय कुमार केडिया बनाम खुफिया अधिकारी, मादक पदार्थ नियंत्रण ब्यूरो और अन्य; भारत संघ बनाम निराला यादव और रणबीर शोकीन बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) में** लगातार पालन किया गया है।इसलिए यह अच्छी तरह से माना जाए कि उदय मोहनलाल आचार्य (सुपरा) में दर्ज तीसरे निष्कर्ष के संदर्भ में, निर्धारित अवधि की समाप्ति पर, निर्धारित अवधि के भीतर अनुसंधान पूरा करने में अनुसंधान एजेंसी द्वारा चूक के कारण जमानत पर रिहा होने के लिए आरोपी के पक्ष में एक अक्षम्य अधिकार प्राप्त होता है और आरोपी जमानत पर रिहा होने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट के निर्देश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है।

12. लेकिन वर्तमान मामले में जो सवाल उठते हैं, वे थोड़े अलग आयाम के हैं। यहाँ अनुसंधान पूरा हो गया है और 05.07.2018 पर धारा 173 के तहत चालान दायर किया गया। हालांकि, उससे ठीक दो दिन पहले, उच्च न्यायालय द्वारा लोक अभियोजक की प्रस्तुति को दर्ज करते हुए एक आदेश पारित किया गया था कि मामले का अनुसंधान एक राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाएगा। जिस अनुसंधान के कारण 05.07.2018 पर रिपोर्ट दाखिल की गई, वह उच्च न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान के अनुरूप नहीं थी। यही कारण था कि मजिस्ट्रेट द्वारा कागजात वापस कर दिए गए। यह सब 90 वें

5 (2007) 5 एससीसी 773
6 (2009) 17 एससीसी 631
7 (2014) 9 एससीसी 457

8 (2018) 4 एससीसी 405

दिन की समाप्ति से पहले हुआ। क्या यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान संहिता की धारा 167 (2) के प्रयोजनों के लिए पूरी की गई थी ताकि उक्त प्रावधान के संदर्भ में अभियुक्त को लाभ से वंचित किया जा सके। इसके अतिरिक्त एक अन्य मुद्दा जो विचार के लिए उत्पन्न होता है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को उस आदेश के रूप में माना जा सकता है जिसके तहत अनुसंधान पूरा करने की अवधि बढ़ाई गई थी।

13. हम इस स्तर पर संहिता की धारा 167 (1) और (2) नामक प्रासंगिक प्रावधानों को निकाल सकते हैं:

"167. प्रक्रिया जब अनुसंधान चौबीस घंटे में पूरा नहीं किया जा सकता है।—

(1) जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और अभिरक्षा में रखा जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर अनुसंधान नहीं किया जा सकता है, और यह विश्वास करने के लिए आधार हैं कि आरोप या जानकारी पूरी तरह से निराधार है, तो पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी या अनुसंधान करने वाला पुलिस अधिकारी, यदि वह उप–निरीक्षक के पद से नीचे नहीं है, तो मामले से संबंधित इसके बाद निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति तुरंत निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रेषित करेगा, और साथ ही आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेजेगा।

(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसे इस धारा के तहत एक अभियुक्त भेजा जाता है, चाहे उसे मामले की सुनवाई करने की अधिकारिता हो या न हो, समय–समय पर ऐसे मजिस्ट्रेट को ऐसी अभिरक्षा में अभियुक्त को अभिरक्षा में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है, जो ऐसा मजिस्ट्रेट पूरी तरह से पंद्रह दिनों से अधिक की अवधि के लिए उचित समझता है; और यदि उसे मामले की सुनवाई करने या मुकदमे के लिए इसे करने की कोई अधिकारिता नहीं है, और वह आगे अभिरक्षा को अनावश्यक समझता है, तो वह अभियुक्त को ऐसी अधिकारिता वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है।

बशर्ते कि (क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त को पुलिस की अभिरक्षा से भिन्न पंद्रह दिनों की अवधि के बाद अभिरक्षा में रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं, लेकिन कोई भी मजिस्ट्रेट इस अनुच्छेद के तहत अभिरक्षा में अभियुक्त को कुल अवधि से अधिक के लिए अभिरक्षा में रखने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा, (i) नब्बे दिन, जहां अनुसंधान मृत्यु, आजीवन कारावास या दस साल से कम की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है; (ii) साठ दिन, जहां अनुसंधान किसी अन्य अपराध से संबंधित है। अन्य अपराध, और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत देता है, और इस उप–धारा के तहत जमानत पर रिहा किया गया प्रत्येक व्यक्ति उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत इस तरह से रिहा माना जाएगा; (बी) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत किसी भी अभिरक्षा में निरोध को अधिकृत नहीं करेगा जब तक कि आरोपी को

उसके सामने पेश नहीं किया जाता है; (सी) द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त नहीं है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध को अधिकृत नहीं करेगा।"

14. जिस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण संहिता की धारा 167 को लागू किया गया, जैसा कि वर्तमान में है, उस पर न्यायाधीश मदन बी. लोकुर ने **राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य** में अपने फैसले के पैराग्राफ 11 से 15 में चर्चा की है। पैराग्राफ 11 और 12 में भारत के विधि आयोग की 41 वीं रिपोर्ट, विधि आयोग द्वारा सुझाए गए प्रस्तावित प्रावधानों और संहिता को पेश करते समय दिनांक 07.11.1970 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण से कुछ अंश निकाले गए हैं। उक्त पैराग्राफ 11 और 12 यहाँ उद्धृत किए गए हैं:–

"11. दुर्भाग्य से, जब भी अवसर आता है तो सभी कानूनों का दुरुपयोग किया जाता है, और दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 167 कोई अपवाद नहीं थी। चूंकि 15 दिनों की समय सीमा के भीतर अनुसंधान पूरा करने में व्यावहारिक कठिनाई होती थी, इसलिए अभियोजन पक्ष अक्सर दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 344 के प्रावधानों का सहारा लेता था और आरोपी को हिरासत में रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रारंभिक या अधूरी रिपोर्ट दायर करता था। भारत के विधि आयोग ने अपनी 41 वीं रिपोर्ट (पहले की कई रिपोर्टों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद) में इसका उल्लेख किया और यह स्वीकार करते हुए कि अनुसंधान पूरा करने के लिए समय–सीमा को बढ़ाकर 60 दिन करने का प्रस्ताव किया:

> "14.19..... इस तरह के विस्तार के परिणामस्वरूप अधिकतम अवधि नियमित रूप से प्रत्येक मामले में नियम बन सकती है; लेकिन हमें विश्वास है कि उच्च न्यायालयों द्वारा उचित पर्यवेक्षण इसे रोकेगा।"

भारत के विधि आयोग और उसके प्रस्ताव द्वारा व्यक्त विचार इस प्रकार है:

"14.19. धारा 167– धारा 167 में रिमांड का प्रावधान है। कुल अवधि जिसके लिए एक गिरफ्तार व्यक्ति को अभिरक्षा में भेजा जा सकता है–पुलिस या न्यायिक–15 दिन है। धारणा यह है कि जाँच 15 दिनों के भीतर पूरी की जानी चाहिए, और तब तक धारा 173 के तहत अंतिम रिपोर्ट अदालत को भेजी जानी चाहिए। हालाँकि, वास्तविक व्यवहार में, इसे अक्सर अव्यवहारिक पाया गया है। अक्सर, एक जटिल अनुसंधान 15 दिनों के भीतर पूरा नहीं किया जा सकता है, और यदि अपराध गंभीर है, तो पुलिस स्वाभाविक रूप से इस बात पर जोर देती है कि आरोपी को अभिरक्षा में रखा जाए। इसलिए संदिग्ध कानूनी वैधता की प्रथा बढ़ी है। पुलिस मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रारंभिक या "अपूर्ण" रिपोर्ट दाखिल करती है, और मजिस्ट्रेट, धारा 344 के तहत कार्रवाई करने का तात्पर्य रखते हुए, कार्यवाही को स्थगित कर देता है और आरोपी को हिरासत में भेज देता है।चौदहवीं रिपोर्ट में, विधि आयोग को संदेह था कि क्या धारा 344 के तहत ऐसा आदेश दिया जा सकता है, क्योंकि उस धारा का उद्देश्य मजिस्ट्रेट द्वारा किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद ही काम करना है, जो धारा 173 के तहत अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद ही ठीक से किया जा सकता है, और तब तक नहीं जब तक कि जांच अभी भी जारी है।हमारा भी यही विचार है और हमें भी यह उचित लगता है कि इस संबंध में कानून को स्पष्ट किया जाना चाहिए। धारा 167 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि से

परे रिमांड के लिए धारा 344 का उपयोग गंभीर दुरुपयोग का कारण बन सकता है, क्योंकि एक गिरफ्तार व्यक्ति को इस तरह से अनिश्चित काल के लिए अभिरक्षा में रखा जा सकता है, जबकि अनुसंधान आराम से चल सकता है। इसलिए, जैसा कि चौदहवीं रिपोर्ट में देखा गया था, यह वांछनीय है कि रिमांड प्राप्त करने के लिए पुलिस की शक्ति पर कुछ समय–सीमा रखी जानी चाहिए, जबकि अनुसंधान अभी भी चल रहा है और यदि 15 दिनों की वर्तमान समय–सीमा बहुत कम है, तो कानूनी सुरक्षा की भावना का उल्लंघन करने वाली प्रथा को स्वीकार करने के बजाय लंबी अवधि तय करना बेहतर होगा। पहले के विधि आयोग की तरह, हम महसूस करते हैं कि 15 दिन शायद बहुत कम हैं, और इसलिए हम चौदहवीं रिपोर्ट की सिफारिश का पालन करने का प्रस्ताव करते हैं कि धारा 167 के तहत अधिकतम अवधि 60 दिन तय की जानी चाहिए। हम इस खतरे से अवगत हैं कि इस तरह के विस्तार के परिणामस्वरूप प्रत्येक मामले में अधिकतम अवधि नियमित रूप से नियम बन सकती है; लेकिन हमें विश्वास है कि उच्च न्यायालयों द्वारा उचित पर्यवेक्षण इसे रोक देगा। हम तदनुसार धारा 167 की उप–धारा (2) और (4) को निम्नानुसार संशोधित करने का प्रस्ताव करते हैं:

> '167. (2) मजिस्ट्रेट जिसे इस धारा के तहत एक अभियुक्त भेजा जाता है, चाहे उसे मामले की सुनवाई करने की अधिकारिता हो या न हो, समय–समय पर आरोपी को ऐसी अभिरक्षा में रखने के लिए प्राधिकृत कर सकता है जो ऐसा मजिस्ट्रेट उचित समझे। एक बार में पंद्रह दिनों और कुल मिलाकर साठ दिनों से अधिक। अगर उसके पास मामले की सुनवाई करने या इसे मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, और वह आगे अभिरक्षा को अनावश्यक समझता है, वह अभियुक्त को ऐसी अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के पास भेजने का आदेश दे सकता है:
>
> बशर्ते कि –
>
> (ए) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत किसी भी अभिरक्षा में अभिरक्षा को अधिकृत नहीं करेगा जब तक कि आरोपी को उसके सामने पेश नहीं किया जाता है; (बी) उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट पुलिस की अभिरक्षा में अभिरक्षा को अधिकृत नहीं करेगा।
>
> (4) ऐसा आदेश देने वाले मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अलावा कोई भी मजिस्ट्रेट अपने आदेश की एक प्रति, इसे बनाने के अपने कारणों के साथ, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजेगा।""

12. भारत के विधि आयोग की सिफारिशों की सावधानीपूर्वक जांच की गई और फिर उन्हें स्वीकार कर लिया गया। (नई) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 को लागू करने के लिए दिनांक 7–11–1970 के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में उल्लिखित स्वीकृति के लिए बुनियादी विचार थे:

"3. आयोग की सिफारिशों की सरकार द्वारा अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित बुनियादी बातों को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक जांच की गई –

(i) अभियुक्त व्यक्ति को प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार निष्पक्ष सुनवाई मिलनी चाहिए।

(ii) अनुसंधान और मुकदमे में देरी से बचने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए जो न केवल शामिल व्यक्तियों के लिए बल्कि समाज के लिए भी हानिकारक है; और

(iii) प्रक्रिया जटिल नहीं होनी चाहिए और यथासंभव, समुदाय के गरीब वर्गों के लिए उचित सौदा सुनिश्चित करना चाहिए।

अनुसंधान के व्यावहारिक अनुभव और आपराधिक अदालतों के कामकाज के आधार पर अन्य वर्गों से प्राप्त उचित सुझावों पर विचार करने और उन्हें अपनाने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया गया है।"

15. जैसा कि विधि आयोग ने अपनी 41 वीं रिपोर्ट के पैराग्राफ 14.19 में अवलोकन किया कि, संदिग्ध कानूनी वैधता की प्रथा वहां बढ़ी, जहां पुलिस, मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रारंभिक या अधूरी रिपोर्ट दायर करती थी और मजिस्ट्रेट, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 344 के तहत कार्रवाई करने का तात्पर्य रखते हुए कार्यवाही को स्थगित कर देता था और आरोपी को अभिरक्षा में भेज देता था। यह देखा गया कि धारा 167 के तहत निर्धारित वैधानिक अवधि से परे इस तरह की रिमांड से गंभीर दुरुपयोग होगा और इसलिए रिमांड प्राप्त करने के लिए पुलिस की शक्ति पर कुछ समय सीमा रखने की आवश्यकता थी और इसलिए अनुसंधान पूरा करने के लिए अधिकतम अवधि का सुझाव दिया गया था। नए कोड की शुरुआत के उद्देश्यों और कारणों में भी इसी तरह की चिंता व्यक्त की गयी है।

16. संहिता की धारा 167 के अधिनियमन के पीछे की भावना इस प्रकार अनिवार्य है कि अनुसंधान निर्धारित अवधि के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। आदर्श रूप से, संहिता के प्रावधानों के अनुसार अनुसंधान पहले 24 घंटों के भीतर ही पूरा किया जाना चाहिए। इसके अलावा धारा 167 की उप–धारा (1) के संदर्भ में, यदि "यह प्रतीत होता है कि अनुसंधान धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर पूरी नहीं की जा सकती है" तो संबंधित अधिकारी को मामले से संबंधित डायरी में प्रविष्टियां प्रेषित करनी चाहिए और साथ ही आरोपी को मजिस्ट्रेट के पास भेजना चाहिए। इसके बाद, यह मजिस्ट्रेट को विचार करना है कि आरोपी को अभिरक्षा में भेजा जाए या नहीं। उप–धारा (2) तब मजिस्ट्रेट की शक्ति के प्रयोग पर कुछ सीमाएं निर्धारित करती है और परंतुक में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट आरोपी को 90 या 60 दिनों से अधिक की कुल अवधि के लिए अभिरक्षा में रखने को अधिकृत नहीं कर सकता है, जैसा भी मामला हो। यह आगे निर्धारित किया गया है कि 90 और 60 दिनों की ऐसी अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो, आरोपी व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा, यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत देता है।

17. इस प्रावधान का एक निश्चित उद्देश्य है; अनुसंधान से संबंधित सामग्री के आधार पर, मजिस्ट्रेट को मामले को आगे बढ़ाने की स्थिति में होना चाहिए। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से संकेत दिया गया है कि अनुसंधान का चरण 90 या 60 दिनों तक सीमित होना चाहिए, जैसा भी मामला हो, और उसके बाद आरोपी की अभिरक्षा से संबंधित मुद्दा मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसंधान के आधार पर निपटा दिया जाना चाहिए। स्वतंत्रता से संबंधित मामले और मुद्दे और आरोप के आरोपी व्यक्ति को कैद किया जाना चाहिए या नहीं, यह मजिस्ट्रेट द्वारा तय किया जाना चाहिए न कि पुलिस द्वारा।

ऐसे व्यक्ति की आगे की अभिरक्षा केवल इस संदेह से निर्देशित नहीं होनी चाहिए कि उसने कोई अपराध किया है या उस मामले के लिए, लंबित अनुसंधान को सुविधाजनक बनाने के लिए।

18. वर्तमान मामले में 90 वें दिन, संबंधित मजिस्ट्रेट के लिए स्थिति का आकलन करने के लिए संहिता की धारा 173 के संदर्भ में कोई कागजात या आरोप पत्र नहीं थे कि क्या गुण–दोष के आधार पर आरोपी को आगे की अभिरक्षा में भेजे जाने की आवश्यकता थी। हालांकि धारा 173 के संदर्भ में आरोप पत्र 05.07.2018 पर दायर किया गया था, लेकिन इस तरह की फाइलिंग 03.07.2018 पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में नहीं थी, इसलिए दस्तावेज अनुसंधान अधिकारी को वापस कर दिए गए थे। शायद यह बेहतर होता कि लोक अभियोजक उच्च न्यायालय को दिनांक 03.07.2018 पर ही सूचित कर देता कि अनुसंधान पुरा करने की अवधि समाप्त हो रही है। वह यह भी प्रस्तुत कर सकता था कि अनुसंधान से संबंधित कागजात निर्धारित समय के भीतर दायर किए जाएं और उसके बाद सुपीरियर राजपत्रित अधिकारी द्वारा निर्णय लिया जा सकता है कि क्या इस मामले में संहिता की धारा 173 (8) के संदर्भ में आगे अनुसंधान की आवश्यकता है या नहीं। यह एक आदर्श स्थिति होगी। लेकिन हमें उन परिस्थितियों के वास्तविक प्रभाव पर विचार करना होगा जो सामने आईं। तथ्य यह है कि संहिता की धारा 167 के तहत निर्धारित अवधि के 90 दिन पूरे होने पर संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष अनुसंधान के कोई कागजात नहीं थे। इस प्रकार अभियुक्तों को कानून द्वारा स्थापित संरक्षण से वंचित कर दिया गया। उनकी अभिरक्षा के मुद्दे पर संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा गुण–दोष के आधार पर विचार किया जाना था और इस तरह के विचार के लिए उन्हें केवल अभिरक्षा में नहीं भेजा जा सकता था। हमारे सुविचारित विचार में विद्वान अधिवक्ता श्री डेव द्वारा प्रस्तुत निवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए। अब हम सहायक मुद्दे की ओर रुख करते हैं, अर्थात्, क्या उच्च न्यायालय अवधि बढ़ा सकता था। संहिता के प्रावधान किसी को भी उस अवधि को बढ़ाने का अधिकार नहीं देते हैं जिसके भीतर अनुसंधान पूरा किया जाना चाहिए और न ही यह ऐसी किसी घटना को स्वीकार करता है। आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1985 और महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 जैसे अधिनियम हैं जो स्पष्ट रूप से अवधि के विस्तार पर विचार करते हैं और उस हद तक उन अधिनियमों ने धारा 167 सहित संहिता के प्रावधानों को संशोधित किया है। न्यायालय को अवधि बढ़ाने के लिए सशक्त बनाने वाले ऐसे किसी भी समान प्रावधान के अभाव में, कोई भी न्यायालय या तो सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी अवधि का विस्तार करें। मामले की किसी भी स्थिति में उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 03.07.2018 के आदेश में जो कुछ भी दर्ज किया था, वह यह था कि राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा दो महीने के भीतर अनुसंधान पूरा कर लिया जाएगा। आदेश से यह संकेत नहीं मिलता है कि यह उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था कि अनुसंधान पूरा करने की अवधि समाप्त हो रही थी। लोक अभियोजक के प्रस्तुत करने की केवल रिकॉर्डिंग को विस्तार देने वाले आदेश के रूप में नहीं लिया जा सकता था। इस प्रकार हम राज्य के विद्वान वकील और शिकायतकर्ता द्वारा उस ओर से की गई दलीलों को अस्वीकार करते हैं। हमारे सुविचारित मत में अभियुक्तों ने जमानत के लाभों को स्वीकार करने की अपनी इच्छा दिखाई और एक उचित आवेदन दायर करने के बाद, उनके पक्ष में एक अक्षम्य अधिकार प्राप्त हुआ।

19. इस स्तर पर हमें एक महत्वपूर्ण विशेषता पर ध्यान देना चाहिए। **राकेश कुमार पॉल (सुपरा) में, अपने निष्कर्षों में, न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर, ने पैरा 49 में कहाः**

> "**49.** याचिकाकर्ता को तथ्यों और इस मामले की परिस्थितियों में "डिफ़ॉल्ट जमानत" देने का हकदार माना जाता है। ट्रायल जज को याचिकाकर्ता को ऐसे नियमों और शर्तों पर "डिफ़ॉल्ट जमानत" पर रिहा करना चाहिए जो उचित हों।हालाँकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह विषय आरोप के संबंध में ठोस आधारों पर याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी को प्रतिबंधित या अन्यथा नहीं करता है और गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी पर, याचिकाकर्ता नियमित जमानत देने के लिए याचिका का हकदार है, जिस आवेदन पर अपनी योग्यता के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि इससे किसी अन्य मामले में याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

अपने सहमति वाले फैसले में, न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने अपने फैसले के पैराग्राफ 49 से 51 में मदन बी. लोकुर, न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए निष्कर्षों और निर्देशों के साथ सहमति व्यक्त की। उपरोक्त निष्कर्षों के अनुसार, यह प्रश्नगत आरोप के संबंध में ठोस आधारों पर अभियुक्त की गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी को प्रतिबंधित या अन्यथा नहीं रोकेगा और गिरफ्तारी या पुनः गिरफ्तारी पर अभियुक्त नियमित जमानत देने के लिए याचिका का हकदार होगा, जिसके आवेदन पर तब अपनी योग्यता के आधार पर विचार किया जाएगा।

20. इसलिए हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और निर्देश देते हैं कि अपीलकर्ता संहिता की धारा 167 (2) के संदर्भ में जमानत के लिए स्वीकार किए जाने के हकदार हैं। ऐसी शर्तों पर जो विचारण न्यायालय उचित समझे। इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने पर मामले को तुरंत विचारण न्यायालय के समक्ष रखा जाएगा। हम यह भी जोड़ते हैं कि **राकेश कुमार पॉल** (सुपरा) मामले में इस न्यायालय के बहुमत निर्णय में आए निष्कर्षों के संदर्भ में, ठोस आधार पर अपीलार्थियों की गिरफ्तारी या फिर से गिरफ्तारी के लिए कोई निषेध नहीं होगा और ऐसी स्थिति में, अपीलार्थी नियमित जमानत देने के लिए याचिका दायर करने के हकदार होंगे।

21. इस प्रकार अपील को अनुमति है।

अपील की अनुमति दी गई।